प्यारे भाई रामसहाय
स्वयं प्रकाश
चित्र : फजरूद्दीन

नेहरू बाल पुस्तकालय

प्यारे भाई रामसहाय

स्वयं प्रकाश

चित्र

फजरूद्दीन

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
NATIONAL BOOK TRUST, INDIA

विषय सूची

बेर की गुठली

एक बार मैं बेर खा रहा था कि गुठली मेरे पेट में चली गई। मैंने कुसुम मौसी को बताया। कुसुम मौसी ने डराते हुए कहा, "बेर की गुठली पेट में चली गई! तू सच बोल रहा है! बस बच्चू! ठहर जा। अब कुछ रोज बाद तेरे सिर पर बेर का पेड़ उग जाएगा!" मुझे विश्वास नहीं हुआ। मैंने सोचा ऐसा कैसे हो सकता है? मैंने पूछा, "आपने देखा है कोई ऐसा आदमी जिसके सिर पर बेर का पेड़ उग गया हो?" उन्होंने बड़े विश्वास से कहा, "हां-हां! तुझे भी दिखा दूंगी किसी दिन!"

दूसरे दिन घर से स्कूल जाते समय मैं पूरे रास्ते हर आदमी का सिर ध्यान से देखता रहा, लेकिन किसी के सिर पर मुझे बेर का पेड़ उगा हुआ दिखाई नहीं दिया। हां, एक मोटा-सा लड़का जरूर दिखाई दिया जिसने सिर पर टोपी पहन रखी थी। मैंने सोचा, हो सकता है इसने भी बेर की गुठली निगल ली हो और जब सिर पर पेड़ उग आया तो अब उसे छिपाने के लिए टोपी पहनना शुरू कर दिया है।

कुछ रोज बाद हमारी गली से एक बारात निकल रही थी। दूल्हा घोड़ी पर बैठा था। आगे बैण्ड, पीछे बाराती। दूल्हे ने अपने सिर पर खजूर के पत्तों से बना मोर-मुकुट पहन रखा था, जैसा कि मालवा में उन दिनों रिवाज था। कुसुम मौसी ने आवाज देकर मुझे गैलरी में बुलाया और कहा, "देख! इसने भी बेर की गुठली निगल ली थी। उग गया न इसके सिर पर बेर का पेड़?" मैंने ध्यान से देखा। दूल्हे की खजूर की पगड़ी मुझे सचमुच बेर के पेड़ जैसी लग रही थी।

मैं कल्पना करने लगा कि मेरे सिर पर बेर का पेड़ उग गया है और मैं बालों में कंघी नहीं कर पा रहा हूं। कमीज भी ध्यान से पहनता हूं कि सिर पर उगे बेर के कांटों में न उलझ जाए! मैंने अपनी कल्पना की आंखों से देखा कि कुछ रोज बाद पेड़ थोड़ा बड़ा हो गया है। जब नहाता हूं तो पेड़ को पानी मिलता है। अब पेड़ में लाल-लाल बेर लग गए हैं और उन्हें तोड़ने के लिए छोटे-छोटे बच्चे मेरे सिर से लटक रहे हैं। कोई दाहिने झुकाता है कोई बाएं, कोई आगे झुकाता है तो कोई पीछे!

एक रात सपना आया कि मैं स्कूल जा रहा हूं और रास्ते में एक कटखनी गाय मेरे पीछे पड़ गई है। उसे बेर खाने हैं। गाय नथुने फुलाए, सींग आगे किए मेरी तरफ दौड़ पड़ी है...और मैं उससे जान छुड़ाने के लिए जी-जान से भागा जा रहा हूं। मैं जहां भी जा रहा हूं – क्लासरूम में, बाथरूम में, छत पर... – वहीं पीछे-पीछे गाय आ जाती है। डर के मारे मुंह से चीख निकल गई। मैं उठ बैठा।

मैंने सोचा, "काश! बेर की गुठली मेरी लेटरीन के साथ निकल गई हो! लेकिन नहीं निकली होगी...तो?"

बहुत दिन डरता रहा। फिर इस बात को भूल गया।

लेकिन बेर-सीताफल-चीकू जैसे छोटी गुठली वाले फल आज तक नहीं खा पाया।

मुझे वह थप्पड़ आज तक याद है

बात तब की है जब मैं सातवीं कक्षा में पढ़ता था। हम चार-पांच दोस्त साइकिल चलाना सीख रहे थे। हम एक घण्टे के लिए किराए की साइकिलें लेते और शहर से बाहर किसी खुली सड़क पर साइकिल चलाने का अभ्यास करते। मुझे साइकिल चलाना तो आ गया, बस उस पर चढ़ना और उतरना नहीं आया। इसके लिए मैं साइकिल को किसी बड़े पत्थर, चबूतरे या आटले के पास खड़ा करके उस पर बैठ जाता और उतरने के लिए भी ऐसा ही कोई सहारा ढूंढ़ता। फिर भी कितनी बार मैं गिरा होऊंगा और कितनी बार साइकिल, इसका कोई हिसाब नहीं था।

एक दिन हम चार-पांच दोस्त साइकिलें लेकर नवलखा के लिए निकले। यह शहर के बाहर एक निर्जन इलाका था। रास्ते में एक ओवरब्रिज आता था। इससे थोड़ा पहले से ही हम साइकिलें जोर से भगाना शुरू कर देते ताकि आराम से ऊपर तक पहुंच जाएं। एक तरह की होड़ लग जाती कि कौन पहले ऊपर चढ़ता है। फिर ढलान पर तो आराम ही आराम था। न पैडल मारने थे, न जोर लगाना था। आराम से ठण्डी हवा खाते हुए और गला खोलकर गाते हुए उतर जाओ।

उस दिन मैं सबसे पहले पुल के ऊपर तक पहुंच गया और ढलान का मजा लेने के लिए मन ही मन तैयार होने लगा। अचानक सामने से आते धोती-पगड़ी पहने एक देहाती आदमी पर मेरी नजर पड़ी। एक पल के लिए डर लगा कि ढलान पर लुढ़कते हुए मेरी साइकिल कहीं उससे टकरा तो नहीं जाएगी? मैंने दोनों ब्रेक जोर से दबाए...लेकिन साइकिल की रफ्तार में कोई फर्क नहीं पड़ा। ब्रेक काम नहीं कर रहे थे। किराए की साइकिलों में अक्सर ऐसा होता था। ब्रेक ढीले हो जाते थे या ब्रेक के गुटके टेढ़े हो जाते थे। मैं डर गया। हड़बड़ा गया। और हड़बड़ाहट में वही हुआ जिसका मुझे डर था। मेरी साइकिल सामने से आते धोती-पगड़ी वाले आदमी की दोनों टांगों के बीच घुस गई।

पगड़ी वाले आदमी ने गिरने से बचने के लिए दोनों हाथों से मेरी साइकिल का हैण्डल पकड़ लिया। अब वह एक तरह से मेरे मडगार्ड पर बैठा था। दोनों तरफ उसके पैर लटक रहे थे। उसका
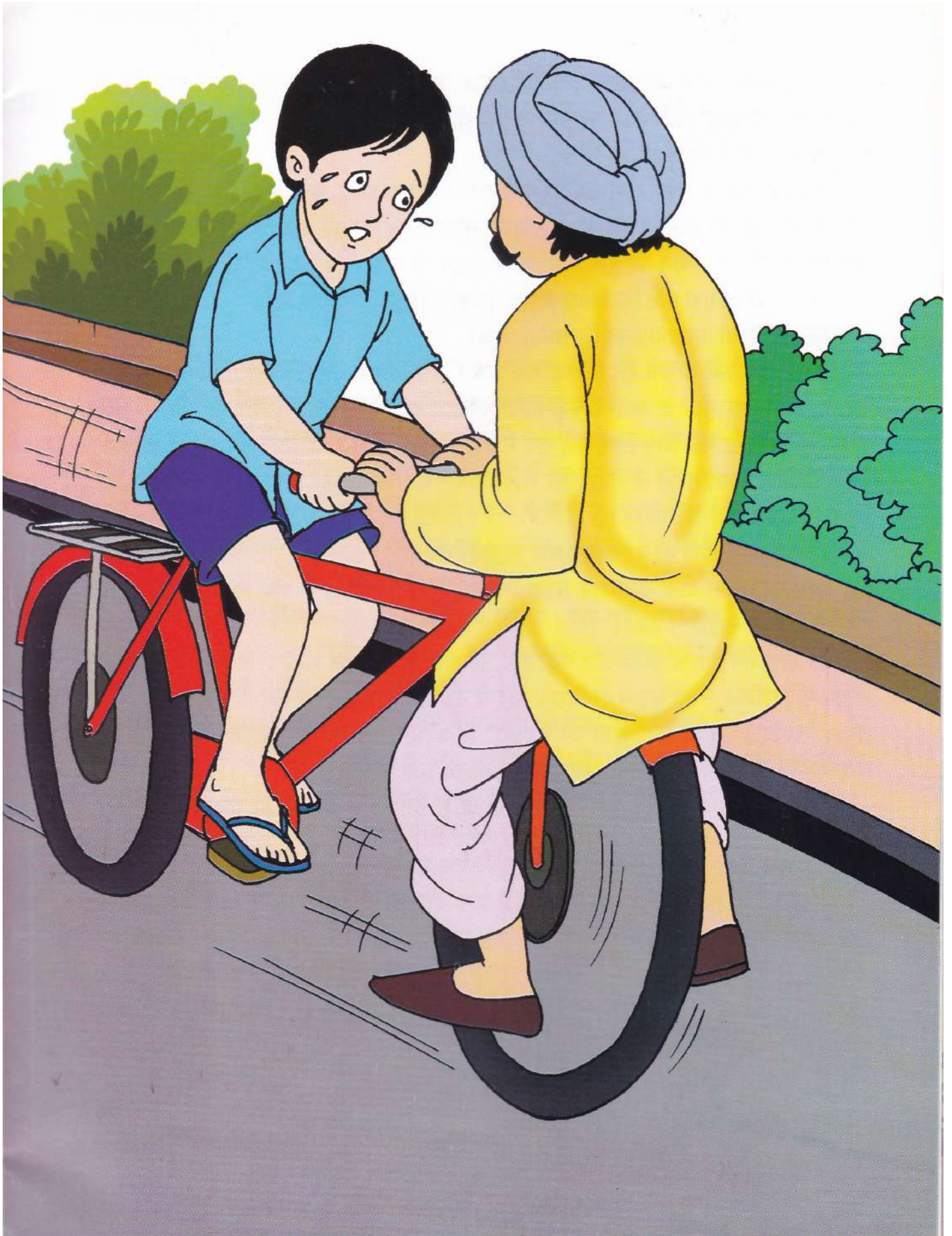
बड़ा-सा मूंछोंवाला चेहरा और पगड़ी ठीक मेरी आंखों के सामने थी। मुझे सड़क दिखाई देना बन्द हो गई थी और साइकिल थी कि जोर से भागी जा रही थी।

आदमी गुस्से में तमतमाते हुए चीखा, 'रोक!'

लेकिन मैं रोकता कैसे? दोनों ब्रेक पूरे दबा रखे थे और साइकिल की रफ्तार फिर भी तेज होती जा रही थी। आदमी ने गर्दन घुमाकर एक नजर सड़क को देखने की कोशिश की। गर्दन पीछे तो क्या मुड़ती, उसे आजू-बाजू की भागती सड़क ही दिखाई दी होगी। वह कूदने की सोच भी रहा हो तो यह देखकर उसने इरादा छोड़ दिया होगा।

उसे और गुस्सा आ गया। वह चिल्लाया, 'रोक!'

अब मैं उसे कैसे बताता कि मैं रोक नहीं सकता। मेरी हालत तो और भी खराब थी। सामने उसकी पगड़ी और मूंछों के अलावा कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। साइकिल में घण्टी भी नहीं थी। साइकिल उसे और मुझे लिए-लिए जैसे कुएं में गिर रही थी। किसी भी समय हम सामने से आती किसी गाड़ी से टकरा सकते थे। दिल जोर से धड़क रहा था। रुलाई फूट पड़ने को थी। और वह था कि रोक! रोक! किए जा रहा था।

जैसे-तैसे ओवरब्रिज की वह ढलान सही सलामत खत्म हुई। साइकिल के अगले मडगार्ड पर टंगे उस बेबस आदमी ने दोनों तरफ की सड़क पर अपनी जूतियां घिसटना शुरू किया। कोई पचास कदम दूर जाकर साइकिल रुकी।

जैसे ही उसने हैण्डल छोड़ा और एक टांग उठाकर खुद को इस मनहूस साइकिल से आजाद किया, मैं साइकिल समेत धड़ाम से गिरा। आदमी मुझे उठाने की बजाय अपनी पगड़ी ठीक करने लगा। जैसे ही मैं उठकर खड़ा हुआ वह मेरे पास आया और मेरे गाल पर एक जोरदार थप्पड़ जड़ दिया। बोला कुछ नहीं। बस थप्पड़ मारा और बड़बड़ाता हुआ चला गया।

मुझे वह थप्पड़ आज तक याद है। पर सोचता हूं उस बेचारे को भी तो दोबारा पुल चढ़ना पड़ा होगा।

नहीं होना बीमार

एक दिन मुझे साथ लेकर नानीजी हमारे पड़ोसी सुधाकर काका को देखने गईं जो बीमार थे। वे अस्पताल में भर्ती थे। अस्पताल जाने का यह मेरा पहला अवसर था।

एक बड़े से वार्ड में कई एक जैसे पलंग लाइन से लगे हुए थे। सब पर एक जैसी सफेद चादर और लाल कम्बल। सफेद दीवारें, ऊंची छत, खिड़कियों पर हरे परदे और फर्श एकदम चमकता हुआ। एक पलंग पर सुधाकर काका लेटे हुए थे। एकदम पास पहुंचने पर दिखाई दिया।

हमें देखकर सुधाकर काका जैसे खुश हो गए। नानीजी ने उनके सिर पर हाथ फेरा और उनके सिरहाने खड़ी हो गईं। और हालचाल पूछने लगीं।

अस्पताल का माहौल मुझे बहुत ही अच्छा लग रहा था। बड़ी-बड़ी खिड़कियों के पार हरे-हरे पेड़ झूम रहे थे। न ट्रैफिक का शोरगुल, न धूल, न मच्छर-मक्खी...। सिर्फ लोगों के धीरे-धीरे बातचीत करने की धीमी-धीमी गुनगुन। बाकी एकदम शान्ति।

तभी सफेद कपड़ों में एक नर्स आई। नर्स ने नानीजी को देखकर अभिवादन में सिर हिलाया और काका को दवा खिलाई। नानीजी काका के लिए साबूदाने की खीर बनाकर लाई थीं। नर्स से पूछा कि खिला दूं क्या? नर्स के हां कहने पर उसके जाने के बाद नानीजी ने चम्मच से धीरे-धीरे काका को साबूदाने की खीर खिलाई। काका ने बहुत स्वाद लेकर खीर खाई।

क्या ठाठ हैं बीमारों के भी। मैंने सोचा...ठाठ से साफ-सुथरे बिस्तर पर लेटे रहो और साबूदाने की खीर खाते रहो! काश! सुधाकर काका की जगह मैं होता! मैं कब बीमार पड़ूंगा!

कुछ रोज बाद एक दिन मेरा स्कूल जाने का मन नहीं किया। मैंने होमवर्क भी नहीं किया था। स्कूल जाता तो जरूर सजा मिलती। मैंने सोचा बीमार पड़ने के लिए आज का दिन बिलकुल ठीक रहेगा। चलो बीमार पड़ जाते हैं।

मैं रजाई से निकला ही नहीं। नानीजी उठाने आईं तो मैंने कहा, 'मैं आज बीमार हूं।'

'क्या हो गया?'

'मेरे सिर में दर्द हो रहा है। पेट भी दुख रहा है और मुझे बुखार भी है।'

नानीजी चली गईं।

मैं रजाई में पड़ा-पड़ा घर में चल रही गतिविधियों का अनुमान लगाता रहा। अब छोटे मामा नहाकर निकले। अब कुसुम मौसी रोज की तरह नाश्ता छोड़कर कॉलेज बस पकड़ने भागीं। अब मुन्नू अपना जूता ढूंढ़ रहा है। अब छोटे मामा ने साइकिल उठाई। अब सब चले गए। अब घर में मैं अकेला रह गया।

पता नहीं कब झपकी-सी आ गई।

तभी फर्श पर पैर घसीटते नानाजी आए। 'क्या हो गया? क्या हो गया?'

'बुखार आ गया।' मैंने कराहते हुए कहा।

'देखें!' नानाजी ने रजाई हटाकर मेरा माथा छुआ। पेट देखा और नब्ज देखने लगे।

इस बीच नानीजी भी आ गईं। 'क्या हुआ?', नानीजी ने पूछा।

'बुखार तो नहीं है।' नानाजी बोले।

'आपको पता नहीं चल रहा। थर्मामीटर लगाकर देखिए।' मैंने कहा।

मुझे पता था घर में कोई नहीं है। थर्मामीटर लगा भी लिया तो देखेगा कौन? नानाजी को दिखाई देता नहीं, नानीजी को देखना आता नहीं। वैसे थर्मामीटर मुंह में लेते ही उसे जोर से चबा लेने की इच्छा होती है। पर खुद को बीमार साबित करने के लिए यह चाल अच्छी थी। बहुत ढूंढ़ा गया पर थर्मामीटर मिला ही नहीं। शायद कोई मांगकर ले गया था।

फिर नानाजी की आवाज आई, 'ले, पुड़िया खा ले।' न चाहते हुए भी मुझे कड़वी पुड़िया खानी पड़ी और काढ़े जैसी चाय पीनी पड़ी। फिर नानाजी बोले, "आज इसे कुछ खाने को मत देना। आराम करने दो। शाम को देखेंगे।"

दोनों चले गए।

मैं पता नहीं कब नींद में गुड़प हो गया।

कुछ देर बाद जब मेरी आंख खुली मुझे बड़ी तेज इच्छा हुई कि इसी समय बाहर निकलकर दिन की रोशनी में अपनी गली की चहल-पहल देखूं। देखा जाए कि चन्दूभाई ड्राइक्लीनर क्या कर रहे हैं? तेजराम नाई की दुकान पर कितने ग्राहक बैठे हैं? महेश घी सेन्टर ने सड़ी मलाई का भगौना आंच पर चढ़ाया या नहीं और टेलीफोन के तारों पर कितनी चिड़ियां बैठी हैं? लेकिन मजबूरी थी। चाहे जितनी ऊब हो, लेटे ही रहना था।

कुछ देर इधर-उधर की, स्कूल की, दोस्तों की बातें सोचता रहा...फिर लेटे-लेटे पीठ दुखने लगी तो उठकर बैठ गया। लेकिन बाहर कुछ आहट होते ही फिर से लेट गया।
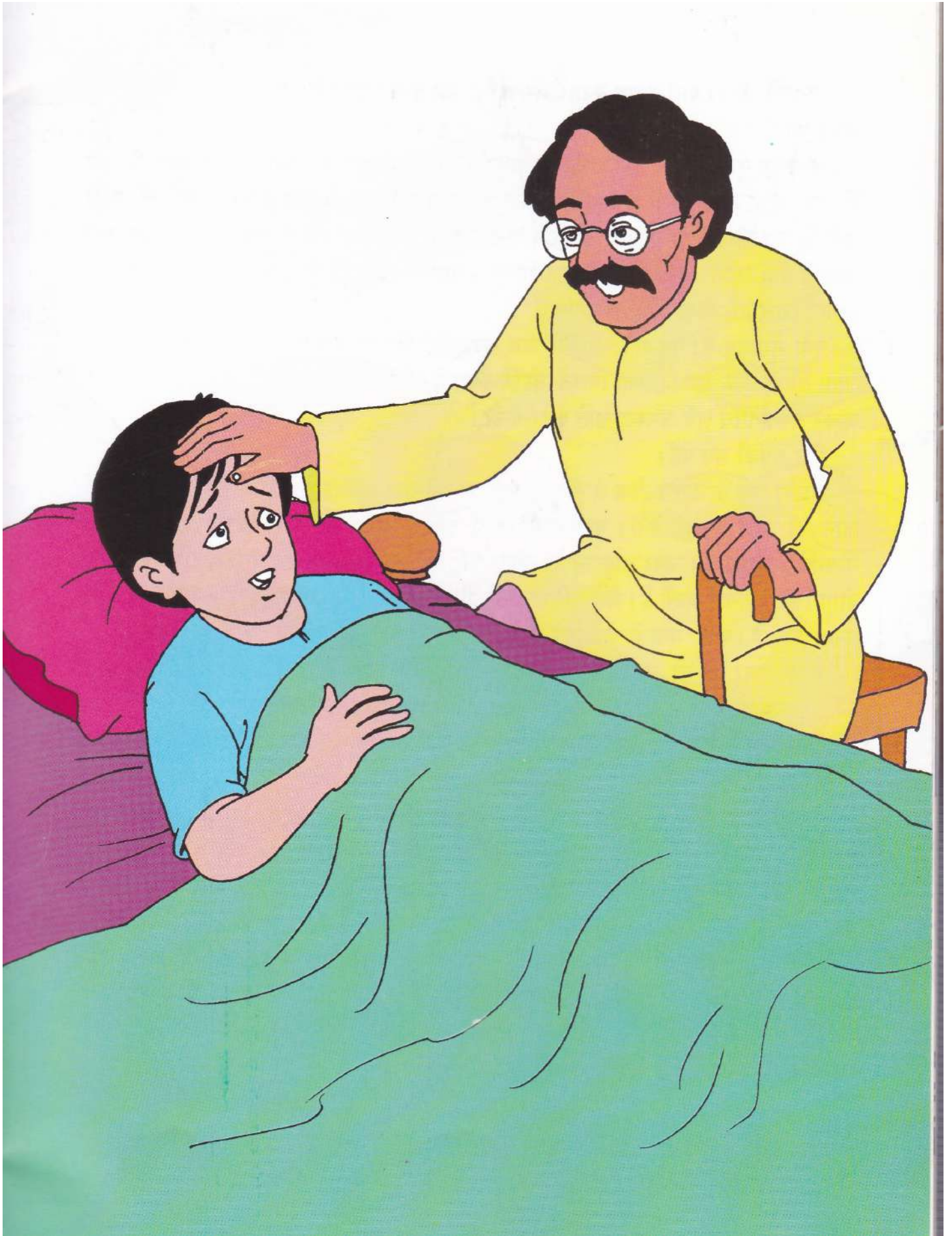
नानाजी आए। बोले, 'अब कैसा है सिरदर्द?' मैंने कहा, 'ठीक है।' फिर भी एक पुड़िया और खिला गए।

अचानक मुझे भूख-सी लगी। फल या साबूदाने की खीर मिलने की उम्मीद की तो सुबह ही हत्या हो चुकी थी। अब नानीजी से जाकर कहूं कि भूख लग रही है तो वे क्या करेंगी? ज्यादा से ज्यादा यही कि दूध पी ले। या नानाजी से पूछने चली जाएंगी – वो कह रहा है भूख लगी है। और फिर नानाजी क्या कहेंगे? वही जो सुबह कह रहे थे – तबियत ढीली हो तो सबसे अच्छा उपाय है भूखे रहना। इससे सारे विकार निकल जाएंगे।

क्या मुसीबत है! पड़े रहो! आखिर कब तक कोई पड़ा रह सकता है? इससे तो स्कूल चला जाता तो ही ठीक रहता। सजा मिलती तो मिल जाती। कितना मजा आता जब रिसेस में ठेले पर जाकर नमक मिर्च लगे अमरूद खाते कटर-कटर।

फिर झपकी लग गई।

लेकिन भूख के कारण ठीक से नींद भी नहीं आ रही थी। और आंख जरा लगती भी तो खाने ही खाने की चीजें दिखाई देतीं। गरमागरम खस्ता कचौड़ी...मावे की बर्फी...बेसन की चिक्की... गोलगप्पे। और सबसे ऊपर साबूदाने की खीर! पता नहीं क्यों साबूदाने की खीर सिर्फ उपवास और बीमारी में ही बनाई जाती है। जैसे गुझिया सिर्फ होली-दिवाली और पंजीरी सिर्फ पूर्णिमा के दिन ही बनाई जाती है। क्यों? क्या ये चीजें जब इच्छा हो तब नहीं बनाई जा सकतीं। कोई मना करता है?

हे भगवान! यह तो अच्छी खासी बोरियत हो गई। पूरा दिन कोई कैसे लेटा रहे? और शाम को...। क्या शाम को भी नानाजी बाहर जाने देंगे? सारे बच्चे हल्ला मचाते हुए आंगन में खेल रहे होंगे और मैं बिस्तर में पड़ा झख मार रहा होऊंगा। साले अक्लमन्द! और बनो बीमार। और आज दिया गया होमवर्क! किससे कॉपी मांगोगे? मैं रुआंसा हो गया।

पास के कमरे में होती खटर-पटर से अन्दाजा हुआ कि मुन्नू स्कूल से आ गया है। तो क्या एक बज गया? अब बरतनों की आवाज आ रही है। शायद सब लोग खाना खाने बैठ रहे हैं। मुन्नू एक बार भी मुझे देखने नहीं आया। आया भी होगा तो दबे पांव आया होगा और मुझे सोता जान लौट गया होगा।

...वो खाना खा रहे हैं। चबाने की आवाजें आ रही हैं। देखो। उन्होंने एक बार भी आकर नहीं पूछा कि तू क्या खाएगा? पूछते तो मैं साबूदाने की खीर ही तो मांगता। कोई ताजमहल तो नहीं मांग लेता। लेकिन नहीं। भूखे रहो!! इससे सारे विकार निकल जाएंगे। विकार निकल जाएं बस। चाहे इस चक्र में तुम खुद शिकार हो जाओ।

बर्फी
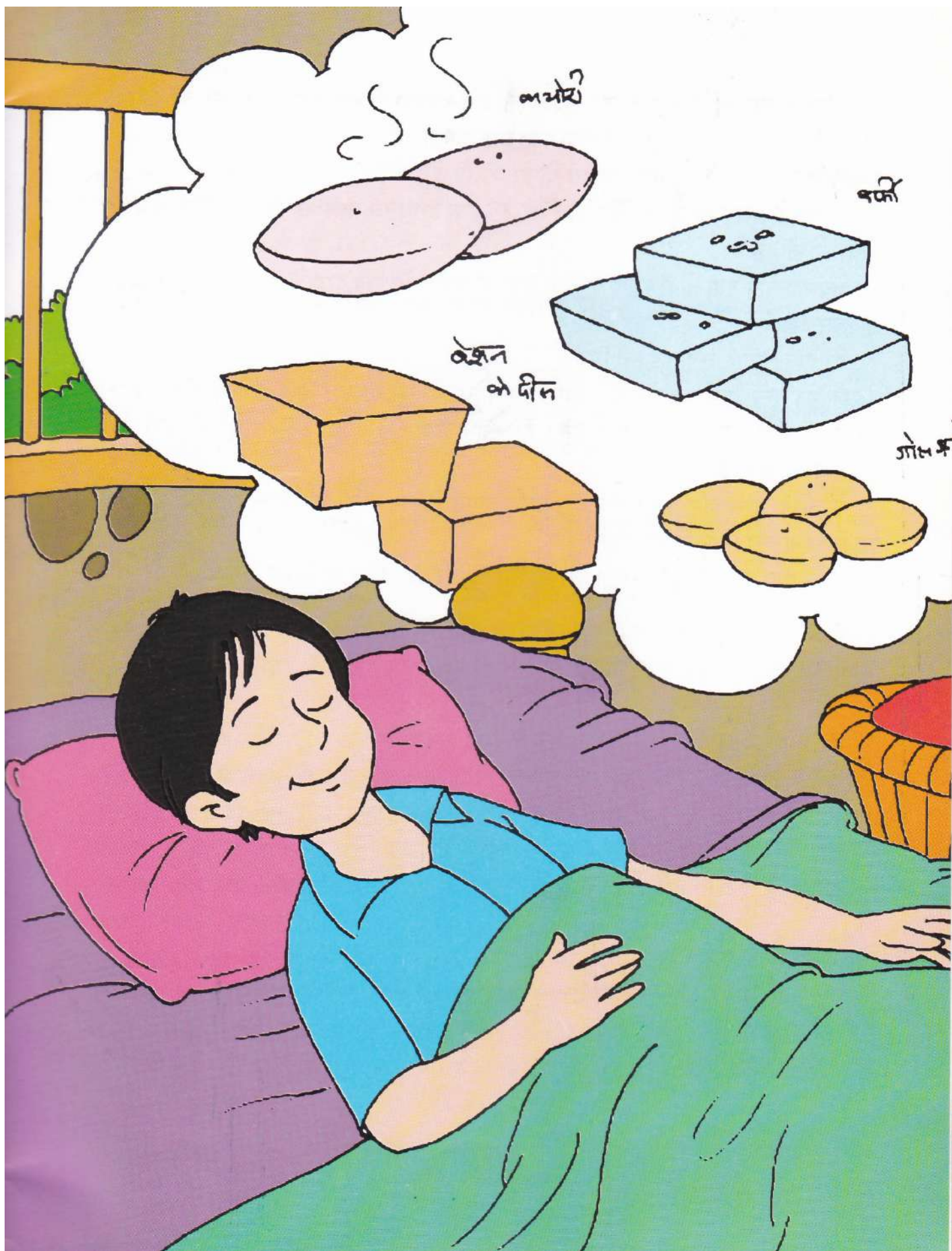
...आज क्या खाना बना होगा? खुशबू तो दाल-चावल की आ रही है। अरहर की दाल में हींग-जीरे का बघार और ऊपर से बारीक कटा हरा धनियां और आधा चम्मच देसी घी। फिर उसमें उन्होंने नीबू निचोड़ा होगा। थोड़ा-सा इस बीमार को भी दे दे कोई।

...लेकिन खुशबू तो किसी और चीज की है। क्या हरी मिर्च तली गई है? उसे दाल-चावल में मसलकर खा रहे हैं।

जब रहा नहीं गया तो मैं रजाई फेंककर खड़ा हो गया। दबे पांव दरवाजे तक गया और चुपके से झांककर देखा।

हां, दाल-चावल, तली हुई हरी मिर्च।

लेकिन मुन्नू आम चूस रहा था। आम! इस मौसम में! जरूर बम्बई वाले चाचाजी ने भेजे होंगे। कैसे चूस रहा है। पूरी गुठली मुंह में ठूंसे। जैसे आम कभी देखे न हों। नदीदा! भुक्कड़ कहीं का। पूरा हाथ भी सान रहा है।

मैं जलन, गुस्से और कुढ़न में पांव पटकता वापस बिस्तर में आ गया। उस पूरे दिन मुझे भूखे पेट ही रहना पड़ा। सारे विकार निकल गए।

इसके बाद स्कूल से छुट्टी मारने के लिए मैंने बीमारी का बहाना कभी नहीं बनाया।

सप्पू बन गया चाचा नेहरू

एक बार हमारे शहर में नेहरूजी आए। जिस-जिस सड़क से नेहरूजी का काफिला गुजरना था, सड़क के दोनों तरफ आदमी, औरतें, बच्चे उनकी झलक पाने के लिए सटे-सटे खड़े थे। और जिस मैदान में नेहरूजी का भाषण होने वाला था वह तो खचाखच भरा हुआ था। मैं भी बड़े मामाजी के साथ नेहरूजी का भाषण सुनने गया।

नेहरूजी क्या बोले यह तो मुझे पूरी तरह समझ में नहीं आया, लेकिन उनका भाषण देने का ढंग मुझे बड़ा अच्छा लगा। उनके कुछ जुमले मुझे सुनते-सुनते ही याद हो गए और कुछ शब्द तो जैसे दिमाग में अटक ही गए। जैसे एक शब्द था – गोया। 'गोया हमें आजादी मिली।' 'गोया हमें मिहनत (मेहनत नहीं) करनी है।' 'गोया हमें देश को आगे बढ़ाना है।' यह गोया शब्द मुझे बड़ा अच्छा लगा। नेहरूजी के मुंह से तो और भी अच्छा लगा। अब इस 'गोया' का मतलब क्या होता है, यह मुझे आज तक नहीं पता।

हम लोग एक बहुत बड़े मकान में रहते थे। मकान एक बाड़े में था। उसमें कुल पैंतीस परिवार रहते थे। बीच में सबके लिए एक बड़ा-सा साझा आंगन था। दूसरे दिन इस आंगन में खड़ा मैं चार-पांच दोस्तों को नेहरूजी के भाषण के बारें में बता रहा था। साथ ही उनके भाषण की नकल कर रहा था। उन्हें मजा आया। वे बोले, 'एक बार और बता।' फिर बोले, 'ऐ इसने, गट्टू ने नहीं सुना, एक बार और बता।' धीरे-धीरे दस-पन्द्रह बच्चे इकट्ठा हो गए। मैं उन्हें नेहरूजी के भाषण की नकल उतारकर बताता रहा।

आंगन में एक बड़ी-सी टंकी थी। दोस्तों ने कहा, 'इस पर चढ़कर बोल। मजा आएगा।' उन्होंने मुझे टंकी पर चढ़ा दिया। मैं और जोश से भाषण की नकल उतारने लगा। भाषण खत्म होने पर सबने बत्तीसी दिखाई और तालियां बजाई। बजाईं क्या, उनसे बज गईं। इस बीच पन्द्रह-बीस छोटे-बड़े बच्चे और इकट्ठा हो गए थे। और बहुत से खिड़कियों-गैलरियों से भी झांक रहे थे। फिर
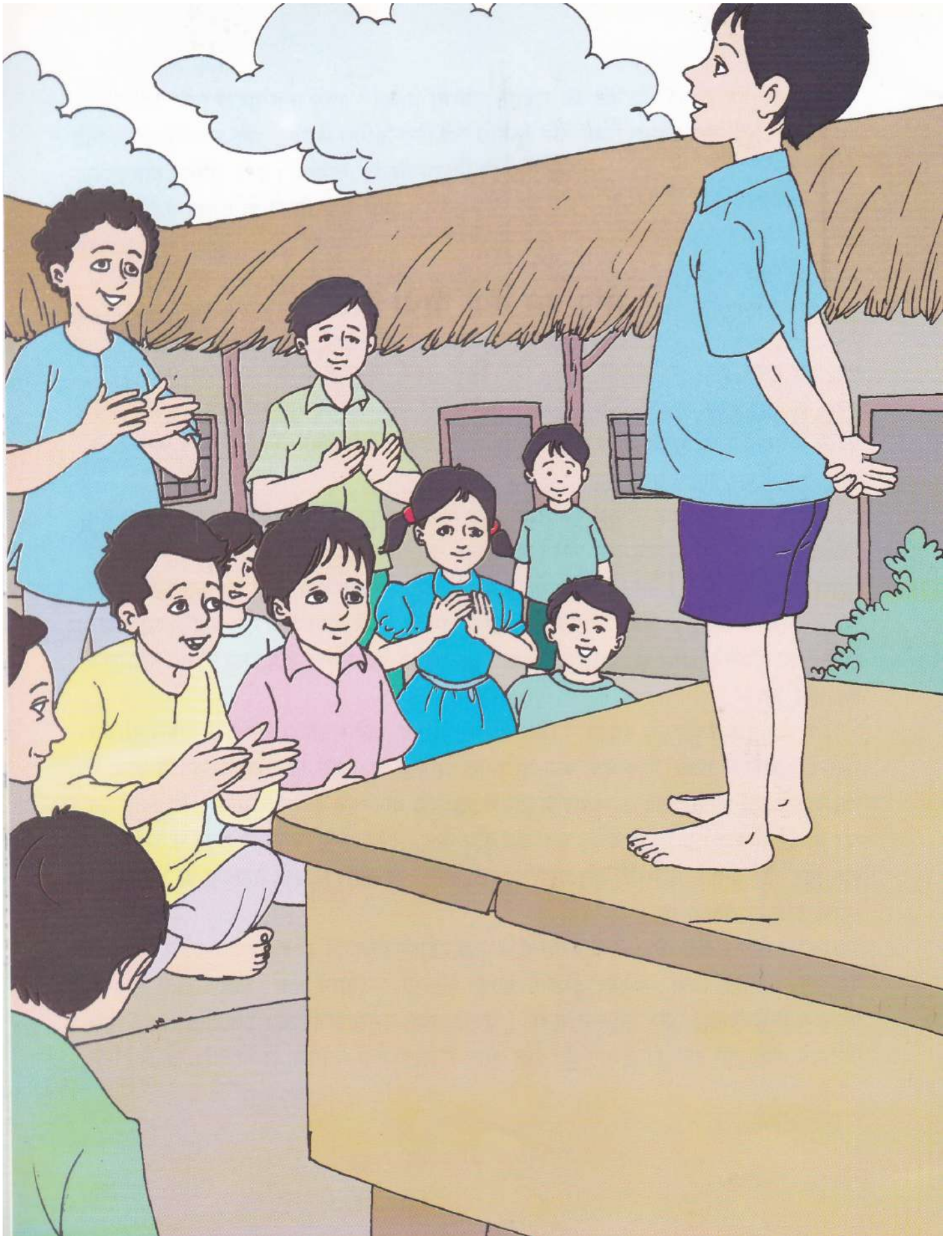
सुनाने की फरमाइश पर मैंने नेहरूजी जैसा मुंह बनाकर, हाथ पीछे बांधकर, अभिनय के साथ भाषण दोहराया। जोरदार तालियां बजीं। अब तक कुछ बड़े लोग भी आ गए थे। जैसे-जैसे भीड़ बढ़ती गई मेरे भाषण में अभिनय की मात्रा भी बढ़ने लगी। और 'गोया' का प्रयोग भी बढ़ने लगा।

बच्चों को लगा कि जब हमें हमारा नेहरूजी मिल ही गया है, तो क्यों न इसकी सवारी निकाली जाए और इसे सम्मानपूर्वक अपने आंगन में लाया जाए। मुझे टंकी से उतारा गया। सब गली में गए। दो बच्चों ने मोटरसाइकिल का हैण्डल पकड़ने की मुद्रा में हाथ ताने और मुंह से दुर्रर...र...र... की आवाज निकालते हुए आगे-आगे दौड़े। चार मेरे आजू-बाजू जीप के पहिए बनकर दौड़े, और दो मोटरसाइकिल वाले गार्ड पीछे। सबके बीच में मैं दौड़ा। यह काफिला गली के चार चक्कर लगाकर गेट पर आया। मैं भी कोई कम नहीं था। सबके बीच दौड़ते हुए मैं दोनों तरफ हाथ हिला-हिलाकर मुसकराता हुआ जनता का अभिवादन करता रहा। जनता नहीं थी। लेकिन उसे होना चाहिए था।

अब मैं बच्चों, आदमियों, औरतों से खचाखच भरे आंगन के बीचों-बीच टंकी पर खड़ा खूब अभिनय के साथ नेहरूजी के भाषण की नकल उतार रहा था। हाथ पीछे बांधे...कभी थोड़ा बाएं घूमता...कभी थोड़ा दाएं...। गोया...गोया कि हमें आजादी मिली...फिर माइक पकड़ता...'गोया कि हमें मिहनत (मेहनत नहीं) करनी है...' फिर थोड़ा सिर खुजाता और टोपी ठीक करने का अभिनय करता ...'गोया गोया गोया कि हमें देश को, मुल्क को आगे ले जाना है।' 'गोया... तरक्की करना है...।'

तालियों पर तालियां पिट रही थीं। दूर के पड़ोसियों को बच्चे दौड़-दौड़कर खबर कर रहे थे – ऐ जल्दी आओ...राजा की आई...जल्दी चलो...आंगन में वैज्जी का सप्पू नेहरूजी के भाषण की खूब मस्त नकल कर रहा है। और आइयां, बाइयां, ताइयां, काकू, आजोबा सब-के-सब काम छोड़-छोड़कर आ रहे थे और बार-बार मुझसे भाषण दिलवाया जा रहा था। तालियां पीटी जा रही थीं और हर भाषण से पहले हमारा मोटरसाइकिल का कारवां गली के चक्कर लगाकर आ रहा था।

जिस समय आंगन में यह चल रहा था, वहां के सबसे सम्पन्न व्यक्ति कुटुम्बले वकील अपने कमरे में बैठे किसी मुकदमे की तैयारी कर रहे थे। इतने में उनका लड़का अशोक ठुनकता हुआ उनके कमरे में पहुंचा और बोला, "काका मुझे नेहरूजी बनना है। मुझे अब्बी के अब्बी नेहरूजी बनना है।"

कुटुम्बले वकील ने उसे पहले तो घूरा, फिर डांटा, "लप्पड़ खाना है क्या? होमवर्क तो होता नहीं अपना, नेहरूजी बनेंगे साले।"

अशोक बोला, "वैज्जी का सप्पू बन सकता है तो मैं क्यों नहीं बन सकता?"

काका जी बोले, "तो बन जा। मना किसने किया?"

अशोक बोला, "लेकिन मैं भाषण कैसे दूंगा?"

काका बोले, "क्यों? जैसे वो दे रहा है तू भी दे देना। वो कैसे दे रहा है?"

अशोक बोला, "वो तो गोया...गोया कर रहा है।"

काका बोले, "तो तू भी गोया गोया कर दे। नहीं तो मोया मोया कर दे। कुछ भी कर दे।"

अशोक ठुनकते हुए बोला, "नहीं, तुम मेरे को भाषण लिखकर दो। अब्बी के अब्बी।"

जब बहुत समझाने पर भी अशोक नहीं माना तो काका ने उसे एक कागज पर आठ-दस लाइन का भाषण लिखकर दे दिया।

कुछ देर बाद दृश्य यह था कि स्टूल के सहारे टंकी पर खड़ा अशोक – जो पता नहीं क्यों काला चश्मा भी लगा आया था – दोनों हाथ से कागज पकड़े नेहरूजी का भाषण पढ़ रहा था। भाषण में विकास, योजना और भविष्य जैसे बड़े-बड़े शब्द आ रहे थे, लेकिन इस अमीर नेहरूजी का भाषण सुनने के लिए आंगन में एक भी आदमी नहीं था।

अगले दिन बड़े मामाजी ने मेरे पिताजी को चिट्ठी लिखी, "आपका लड़का आज नेहरूजी बना था। काफी ठीक-ठाक रहा।"

पता नहीं पिताजी क्या समझे होंगे!

तोताराम का डर

मुन्नू मेरे बचपन का दोस्त था। रिश्ते में वह मेरा मामा लगता था और उम्र में मुझसे एक साल बड़ा भी था, लेकिन पढ़ाई में मुझसे एक साल पीछे था। हम दोनों बड़े सीधे-सादे, दुबले-पतले राजा बेटे किस्म के लड़के थे। पढ़ाई तथा अन्य गतिविधियों में अव्वल लेकिन दौड़-भाग, खेलकूद में फिसड्डी। न तो हम और बच्चों की तरह लट्टू घुमाते, कंचे खेलते, न पतंग उड़ाते। हम सिर्फ ऐसा करते हुए बच्चों से ईर्ष्या करते। क्योंकि हमारे घरवालों की नजर में ये सब गन्दे, गंवार और झगड़ालू बच्चों के खेल थे।

ऐसा नहीं कि हमारा कभी किसी से झगड़ा नहीं होता था, लेकिन तू तू-मैं मैं से ही बात निपट जाती। मारपीट की नौबत ही नहीं आती।

मान लो किसी से झगड़ा हुआ तो छाती फुलाकर उसके ठीक सामने नाक से नाक भिड़ाकर जा खड़े होते और फिर ऐसा संवाद होताः

क्या है?

क्या है?

क्या बात है?

क्या बात है?

क्या समझता है अपने आपको?

तू क्या समझता है?

बहुत गरमी आ गई है।

तुझे बहुत गरमी आ गई है।

एक पड़ेगी तो होश ठिकाने आ जाएंगे।

तुझे एक पड़ गई तो सब भूल जाएगा।

अब हाल यह था कि तोताराम जमीन पर चित्त पड़ा था। मुन्नू उसके दोनों घुटने दबाए उसकी जांघों पर बैठा था और मैं उसकी दोनों बांहें मरोड़े उसकी छाती पर बैठा था। तीनों हांफ रहे थे और लार टपका रहे थे, पर कोई किसी को छोड़ नहीं रहा था। तोताराम पूरी तरह हमारे काबू में था।

लेकिन अब! अब क्या करें? इसे छोड़ा नहीं कि इसने हमारी चटनी बनाई नहीं।

बैठे रहें। लेकिन कब तक?

अचानक दूर एक आदमी दिखाई दिया। हम चिल्लाए, "भाई साहब! ओ भाई साहब!"

दो बच्चों की अति पुकार सुनकर भाई साहब थोड़ा पास आए।

"भाई साहब! ये हमें मार रहा है!" मुन्नू दर्द से चीखा।

"भाई साहब! हमें बचाइए। ये हमें मारता है!" मैंने सुर में सुर मिलाया।

भाई साहब ने कौतुक से देखा। एक लड़का जमीन पर चित्त पड़ा है। दो लड़के उसके हाथ-पैर दबोचे उसके ऊपर चढ़े-बैठे हैं। और जो ऊपर चढ़े-बैठे हैं वे कह रहे हैं कि नीचे वाला उन्हें मार रहा है।

भाई साहब मुस्कुराए। हाथ पीछे बांधे और अपने रास्ते चले गए।

अब! मैदान में दूर-दूर तक कोई नहीं था। अंधेरा हो रहा था। देर से घर पहुंचे तो मार पड़ेगी। क्या करें? कुछ नहीं सूझा तो हम दोनों जोर-जोर से रोने लगे।

फिर पता नहीं कैसे अचानक हम दोनों एक साथ उठे और तोताराम को छोड़ घर की तरफ भागे। काफी दूर जाने पर पीछे मुड़कर देखा। नहीं, तोताराम हमारे पीछे नहीं आ रहा था। पर इससे क्या होता है? वह बड़े-बड़े डग भरता कभी भी आ सकता है।

हांफते-हांफते घर पहुंचे।

अब कल! कल क्या होगा? हम तो उससे डरते ही हैं, सवाल यह है कि तोताराम हमसे डरा कि नहीं? खुशी की बात यह हुई थी कि तोताराम भी हमसे डर गया था।

भाषा की चुहल

बचपन में भाषा के साथ हम लोगों का रिश्ता चुलबुल-चुहलबाजी का था। उससे छेड़छाड़ किए बगैर हमसे रहा नहीं जाता था। चाहे किसी का नाम हो, फिल्मी गाना या फिर कविता हो – हम किसी को छोड़ते नहीं थे।

एक दिन खाली पीरियड में बात चली कि ये जो अपने नाम के आगे कई लोग 'सिंह' लगाते हैं, इसका क्या मतलब है? राम सिंह, मान सिंह, विश्वनाथ सिंह, शिव सिंह! अब जैसे नारायण सिंह में नारायण तो फिर भी समझ में आता है पर नारायण के सिंह का मतलब! नारायण क्या सर्कसवाला है?

इस पर एक दोस्त बोला कि राम सिंह, नारायण सिंह तो फिर भी ठीक है, पर सोचो कि ये गोपाल सिंह कैसा होता होगा?

कुछ देर हंसने के बाद एक दोस्त बोला, "सिंह तो चलो फिर भी ठीक है। मुझे तो ये समझ में नहीं आता कि लोग अपने अच्छे-खासे नाम के आगे 'मल' कैसे लगा लेते हैं? भंवरमल, सुजानमल, गुमानमल! और तो और प्रसन्नमल!! ये तो हद हो गई!"

सब खूब हंसे। इसी समय हमारी कक्षा में एक लड़का आया। उसका नाम हरकेश सिंह था। सब उसके पीछे पड़ गए कि बता तेरे नाम का मतलब क्या है?

एक बोला, "'हर' यानी हरि यानी भगवान। तो हरकेश यानी भगवान का बाल।"

तीसरा बोला, "नहीं भाई! 'हर' यानी हरी तो ठीक है। पर 'केश' जो है वो अंग्रेजी का है। तो हरकेश यानी 'भगवान का नगद पइसा'।"

चौथा बोला, "मेरा तो ख्याल है कि 'हर' अंग्रेजी का है और 'केश' हिन्दी का।"

सब खिलखिलाकर हंसे।

एक बोला, "अबे बात न सही बात क्या है? यार ये शरमा रहा है। सही बात मैं बताता हूं। हरकेश में 'हर' और 'केश' दोनों अंग्रेजी के हैं। अब सोचना यह है कि ये 'हर' है कौन?"

एक और बोला, ''सब अंग्रेजी के हैं तो 'सिंग' भी अंग्रेजी का ही होगा। क्या भैया? डूयू सिंग?''

हंसते-हंसते बुरा हाल हो गया। खुद हरकेश भी हंस रहा था।

फिल्मी गाने तो हम चुपचाप सुन ही नहीं सकते थे। साथ-साथ उसकी पैरोडी भी बनाते जाते थे। मिसाल के तौर पर एक गाना था – ''जो वादा किया, वो निभाना पड़ेगा।'' इसके हमारे संस्करण देखिए :

जो वादा किया, वो भुलाना पड़ेगा/जो कांदा दिया, वो कटाना पड़ेगा/जो गीला किया, वो सुखाना पड़ेगा नहीं तो पुलिस को बुलाना पड़ेगा।

एक गाना था – ''तेरी प्यारी-प्यारी सूरत को किसी की नजर ना लगे। चश्मेबद्दूर''। अब इस चश्मेबद्दूर का अर्थ तो हमें पता नहीं था इसलिए हमने इसके कई सरल संस्करण बना लिए। चश्मे पे धूल/चश्मा भोत दूर/चश्मे पे धूल/चश्मे पे धू/चश्मे से क्यू, आदि।

अंग्रेजी जुमलों का मजेदार हिन्दी अनुवाद करना हमारा प्रिय शगल था। हमारे अनुवाद में 'मास्टरपीस' होता 'मालिक का टुकड़ा', 'सोपकेस' होता 'साबुन का मामला', 'हियर लाइज द पॉइण्ट' का हमारा अनुवाद था 'यहां बिन्दु लेटा है।'

क्रिकेट में बगैर हास्यास्पद अनुवादों के काम ही नहीं चलता था। 'लेग ब्रेक' होती थी 'टांग तोडू' और 'सिली पॉइण्ट' – 'बेवकूफ बिन्दु'। 'यॉर्कर' होती थी 'सुर्री' और 'बाउन्सर' – 'सिरतोडू'। 'लेग कटर' होती थी 'टांगकाटू' और 'वाइड बॉल' – 'चौड़ी गेंद'!

लेकिन सबसे ज्यादा मजा आता था कविताओं का अर्थ-अनर्थ करने में। कबीर का एक दोहा है :

चलती चक्की देखकर दिया कबीरा रोय।

दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय।।

इसका हमारा 'अर्थ' देखिए :

कवि कहता है कि हे कबीरदास! चक्की से जरा दूर हटकर खड़े रहो। हाथ-वाथ आ गया तो रोओगे। क्योंकि इसमें कोई फंस गया तो साबुत नहीं बचता।

भाषा के साथ हमारी यह चुहल ऐसी ही थी जैसे अपनी मम्मी से कभी-कभी मजाक कर लेना। ऐसा करने से तो प्यार बढ़ता है न?

नाटक में बवाल

गणेश चतुर्थी से अनन्त चतुर्दशी तक गली-गली में सांस्कृतिक कार्यक्रम होते थे। वादविवाद, आशुभाषण, फैन्सी ड्रेस और गायन स्पर्धा से लेकर नाटक तक। हम हर रोज आसपास के दस-बारह मोहल्लों के कार्यक्रम देखकर आते और सुबह एक-दूसरे को बताते थे। एक बार राधेश्याम ने कहा कि हर मोहल्ले में कार्यक्रम होते हैं, सिर्फ हमारे यहां कुछ नहीं होता। क्यों न इस बार हम लोग मिलकर अपने मोहल्ले में कुछ करें! राधेश्याम का प्रस्ताव सबको इतना पसन्द आया कि बस! कागज-पेन लाने की देर थी, आनन-फानन में गणेश उत्सव समिति का गठन हो गया। दसों दिन का कार्यक्रम बन गया। गणपति कहां बैठेंगे, कब कौन-सी प्रतियोगिता होगी, कौन-कौन निर्णायक होंगे, पुरस्कार क्या दिए जाएंगे, आदि। इस बात पर काफी विवाद हुआ कि अन्त में पुरस्कार वितरण किससे करवाया जाए। आधे बच्चों का कहना था कि मोहल्ले के सबसे बुजुर्ग व्यक्ति से पुरस्कार वितरण करवाया जाए तो आधों का विचार था कि जो सबसे ज्यादा चन्दा दे उसी से पुरस्कार वितरण करवाया जाए।

दूसरे ही दिन से घर-घर जाकर चन्दा मांगने का कार्यक्रम चालू हो गया। चूंकि मोहल्ले में पहली बार गणेशोत्सव का आयोजन हो रहा था और इसमें सभी घरों के बच्चे शामिल थे, इसलिए सबने खुशी-खुशी चन्दा दिया – चार आने से एक रुपए तक। लेकिन आर्यावर्त होटल से राधेश्याम दस रुपए से कम लेने पर राजी नहीं हुआ – जो अन्ततः उन्होंने दे भी दिए। इसी से तय हो गया कि आर्यावर्त होटल के 'महाराज' ही पुरस्कार देंगे। लेकिन जब यह बात अशोक के पापा कुटुम्बले वकील को मालूम पड़ी तो उन्होंने सीधे पच्चीस रुपए दे दिए ताकि पुरस्कार वितरित करने का गौरव उनसे कोई छीन न सके। जबकि पहले वह किसी भी हालत में आठ आने से ज्यादा देने को तैयार नहीं हो रहे थे।

कुल मिलाकर हमारी उम्मीद से ज्यादा चन्दा आ गया और तैयारियां शुरू हो गईं। कार्यक्रम के अनुसार आठवें रोज एक नाटक भी रखा गया था। अब नाटक की खोज शुरू हुई – लाइब्रेरियां
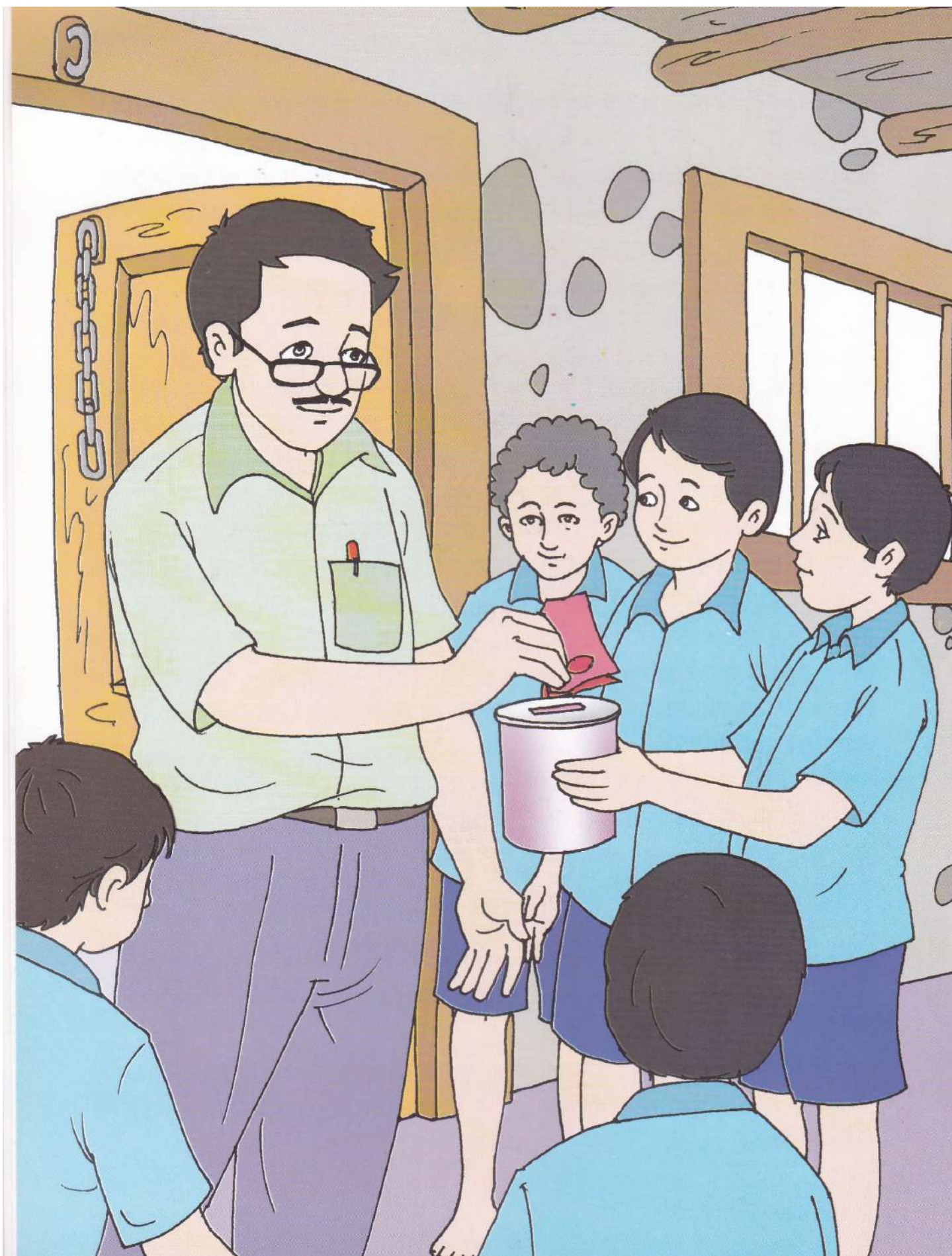
खंगाली गईं। लेकिन कोई नाटक पसन्द नहीं आया। किसी में ढेर सारे दृश्य, किसी में एकदम किताबी भाषा और किसी में स्त्री पात्र! परेशान हो गए। अन्त में तय हुआ कि नाटक हम खुद लिखेंगे। और कई रातों की मेहनत के बाद नाटक हमने लिख भी लिये। नाटक का नाम था – 'झण्डा ऊंचा रहे हमारा'। इसमें भारत-चीन युद्ध का एक मार्मिक प्रसंग था जिसमें एक अकेला भारतीय सैनिक चीनी सैनिकों की पूरी टुकड़ी को ठिकाने लगा देता है।

कार्बन पेपर लगा-लगाकर नाटक की कॉपियां बनाई गईं और रिहर्सल शुरू हुई। एक-दो बच्चों को सीटी बजाकर और मुंह से तरह-तरह की आवाजें निकालकर युद्ध का वातावरण पैदा करना सिखाया गया। चपटी नाक वाले बन्डू को चीनी कप्तान चूंग-चांग का रोल मिला और राजा को भारतीय मेजर का। राजा को हमारे बाड़े का सबसे बढ़िया अभिनेता माना जाता था। वह फिल्मी अभिनेताओं की बड़ी अच्छी नकल उतारता था। वह स्कूल के ड्रामे में भी कोई रोल कर चुका था। लेकिन उसने कहा कि मेरे पापा मुझे करने नहीं देंगे क्योंकि पिछले साल मैं फेल हो गया था। इसलिए मैं केवल इस शर्त पर कर सकता हूं कि मेरे पापा को पता नहीं चले।

अब समस्या थी वर्दी की। तो भारतीय सैनिकों की वर्दी में कोई चक्कर नहीं था। स्काउट और एनसीसी की वर्दी तो थी ही। लकड़ी की बन्दूकें हमने खुद बना ली थीं और टोपियां एक कबाड़ी से किराए पर मिल गई थीं। लेकिन चीनी वर्दी की समस्या थी। खासकर चीनी कप्तान की। अन्त में राधेश्याम उसके लिए एक होटल के ड्राइवर की वर्दी-टोपी ले आया।

इधर-उधर से चौकी-तख्त-मेज वगैरह जुगाड़कर स्टेज बना दिया गया। लिमये अंकल के घर से तार खींचकर लाइट लगा ली गई। इधर-उधर से चादर मांग ली तो परदे बन गए। एक पेन्टर का असिस्टेंट मज्जू का दोस्त था। वह सिर्फ नील और खड़िया से पीछे की दीवार पर बड़ा सुन्दर हिमालय पर्वत बना गया। हम लोगों के हाथ में पहली बार इतना पैसा आया था इसलिए हम न केवल अच्छे-अच्छे पुरस्कार खरीद लाए – जो घूम-फिरकर हमें ही मिलने थे – बल्कि हमने रिहर्सल के दौरान चने-मुरमुरे के नाश्ते भी खूब उड़ाए।

चूंकि सभी घरों के बच्चे नाटक में रोल कर रहे थे इसलिए नाटक को लेकर सबमें घोर उत्सुकता थी। नाटक की रिहर्सल छिपकर होती थी और अभिनेताओं को सख्त हिदायत थी कि शो से पहले नाटक के बारे में किसी को कुछ न बताएं – घरवालों को भी नहीं।

नाटक तैयार था लेकिन चीनी कप्तान की वर्दी नाटक से कुछ देर पहले ही आई। सफेद झक्क और कलफदार साथ ही चमचमाती हुई छज्जेदार टोपी भी। तभी एक हिन्दुस्तानी सैनिक नन्दकिशोर मचल गया कि मुझे चीनी कप्तान का रोल दो वरना सम्हालो अपना नाटक, मैं चला। और वह चला
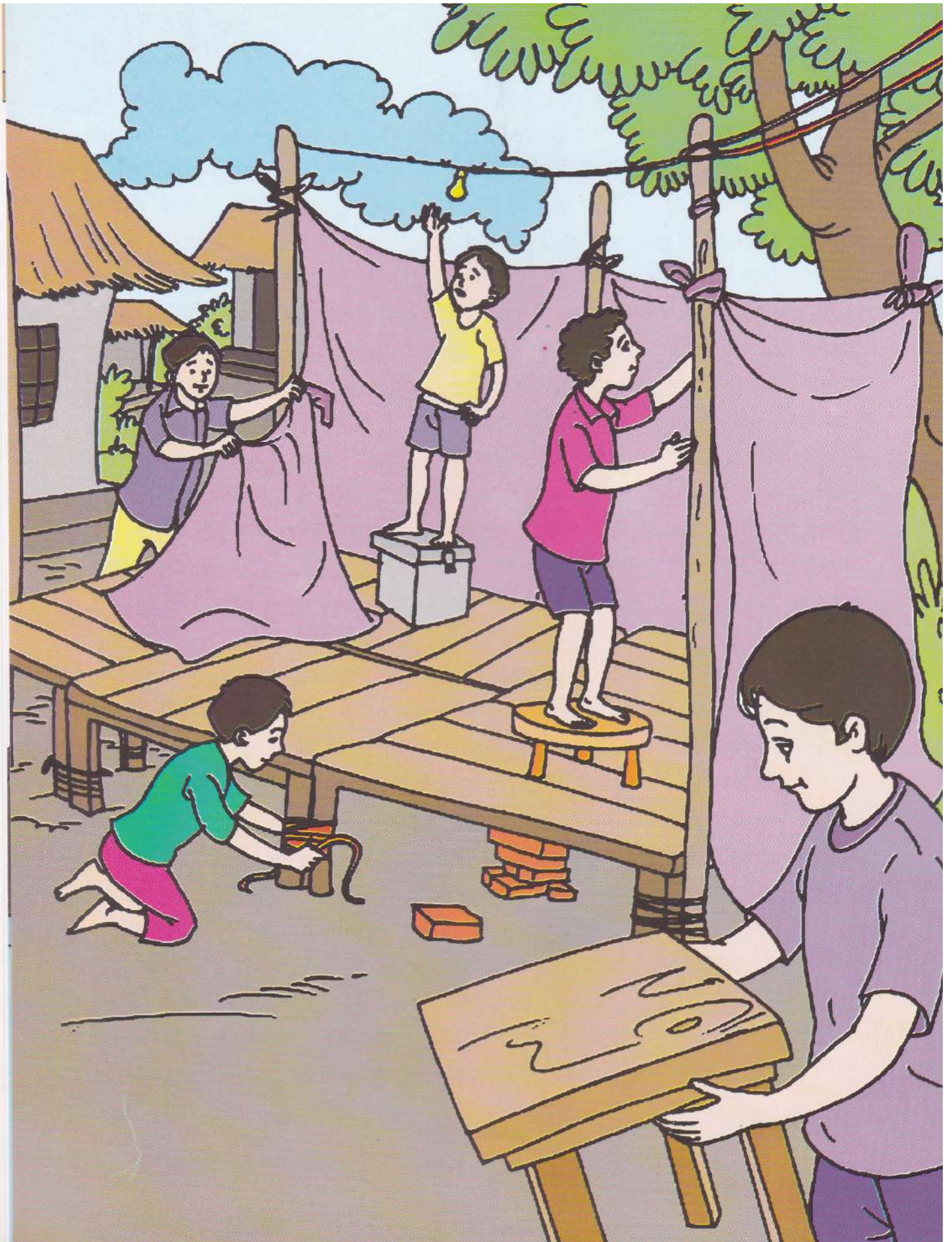
भी गया। तब सारे कलाकारों को दौड़ाया गया कि मेकप-शेकप छोड़ो और नन्दकिशोर जहां भी हो, उसे ढूंढ़कर लाओ! बड़ी मुश्किल से नन्दकिशोर पकड़ में आया और बहुत हाथ-जोड़ी करवाने के बाद नाटक करने को राजी हुआ। किसी तरह नाटक शुरू हुआ।

अशोक एक भारतीय सैनिक का रोल कर रहा था। उसे जोश भरे लहजे में एक डॉयलॉग बोलना था – "जंग के मैदान से भागना कायरों का काम है।" इसे वह हमेशा ऐसे बोलता था – "जंग के मैदान से भागना घायलों का काम है।" वह फाइनल शो में भी ऐसे ही बोला। दर्शक हंसते-हंसते लोटपोट हो गए।

राजा के पापा पुराने जमाने के पिताजियों की तरह थे – भीतर से मक्खन लेकिन बाहर से फौलाद दिखने की कोशिश करने वाले। उन्हें खबर सब थी पर जाहिर नहीं कर रहे थे। फाइनल शो के दिन सबके आने के बाद वे भी चुपके से आए और खचाखच भीड़ में पीछे ही खड़े होकर नाटक देखने लगे। दृश्य यह था कि चीनी सैनिकों ने भारतीय मेजर को पकड़ रखा है और चीनी कप्तान उसे बन्दूक की बट से मार रहा है। भारतीय मेजर बने राजा ने मार खाने और तड़पने का ऐसा सजीव अभिनय किया कि दर्शकों की आंखें भर आईं। तभी भीड़ में पीछे खड़े राजा के पापा चीखे, "अबे मार! दूध नहीं पीता क्या? अपने से आधी उमर के बन्दू से मार खा रहा है! दे! दे साले को उठाके! मार! तू भी मार!"

दर्शक कुछ समझ नहीं पाए और मुड़कर पीछे देखने लगे। अभिनेता सन्न! और राजा ने क्या किया? राजा टोपी फेंककर भागा, स्टेज से कूदा...और उसके पीछे-पीछे 'भारतीय सैनिक' और 'चीनी सैनिक' भागे...राजा सुन...राजा रुक जा...तेरे पापा तुझे मारने नहीं, ईनाम देने आए हैं... राजा!!

बाहर निकलने का दरवाजा किसी ने बन्द कर दिया था। आगे-आगे राजा और पीछे-पीछे चीनी और भारतीय सैनिक भीड़ के चारों तरफ भाग रहे थे...और दर्शकों का हंसते-हंसते बुरा हाल हो रहा था।

अरे, वैज्जी कहां हैं?

हमारा मकान इतना बड़ा था कि उसे बाड़ा कहते थे। उसके तीन पते लगते थे – 13 जेल रोड, गली नम्बर तीन और 24 गंजी कम्पाउण्ड। मकान में पैंतीस परिवार रहते थे, एक स्कूल चलता था, एक किराने की दुकान थी, आंगन में एक कुंआ था। और सड़क की तरफ ऊपर-नीचे दो होटल भी थे – ऊपर आर्यावर्त भोजनालय और नीचे बजरंग जलपान गृह।

दोनों होटलों के पिछवाड़े हमारे दरवाजे के ठीक सामने पड़ते थे। हम खुशबू से ही भांप जाते थे कि आज आर्यावर्त में गोभी की सब्जी बनी है या आज वहां बेसन भूना जा रहा है। बजरंग जलपान गृह में जब सेव बनाई जाती तो उसकी खुशबू सारे बाड़े में फैल जाती। मुंह में पानी आ जाता। बरसात के दिनों में शाम को अक्सर वहां प्याज के भजिए बनते। खुशबू से हमारी हालत खराब हो जाती। एक बार मुझसे रहा नहीं गया तो मैं देखने पहुंच गया कि भजिए किस प्रकार बनाए जा रहे हैं। लेकिन मेरे पहुचने तक भजिए बन चुके थे और उसी समय किसी ने ढेर सारी कटी हुई हरी मिर्च छौंक दी थी। सारे में मिर्च की धांस भर गई। सबके सब छींकने लगे, मैं भी। एक-दूसरे की हालत देखकर पेट पकड़-पकड़कर हंसने लगे।

एक दिन बजरंग जलपान गृह की रसोई में आग लग गई। कढ़ाई से तेल का भभका उठा और छत की शहतीरों ने आग पकड़ ली। जलती लकड़ी के टुकड़े इधर-उधर ठुंसे रखे बोरों पर पड़े तो जगह-जगह से लपटें निकलने लगीं। देखते-देखते जाने कैसे आग की लपटें ऊपर आर्यावर्त भोजनालय तक पहुंच गईं जहां हड़बड़ी में किसी से ठोकर खाकर तेल का पीपा लुढ़क गया था। तेल में भीगी बोरियां एक के बाद एक सुलगने लगीं। नीचे भट्‌टी को बुझाने की कोशिश में उसमें घड़ा भर पानी उंडेल दिया गया...इससे राख, धुएं और चिंगारियों का लपकता हुआ गुबार उठा और सब बाहर निकलने पर मजबूर हो गए। रसोई की दीवारें काली और छत नीची थी। वहां एक ही खिड़की थी जो धुएं और कालिख से एकदम चीकट हो चुकी थी।

आर्यवत भोजनालय
बजरंग जलपा
गृह
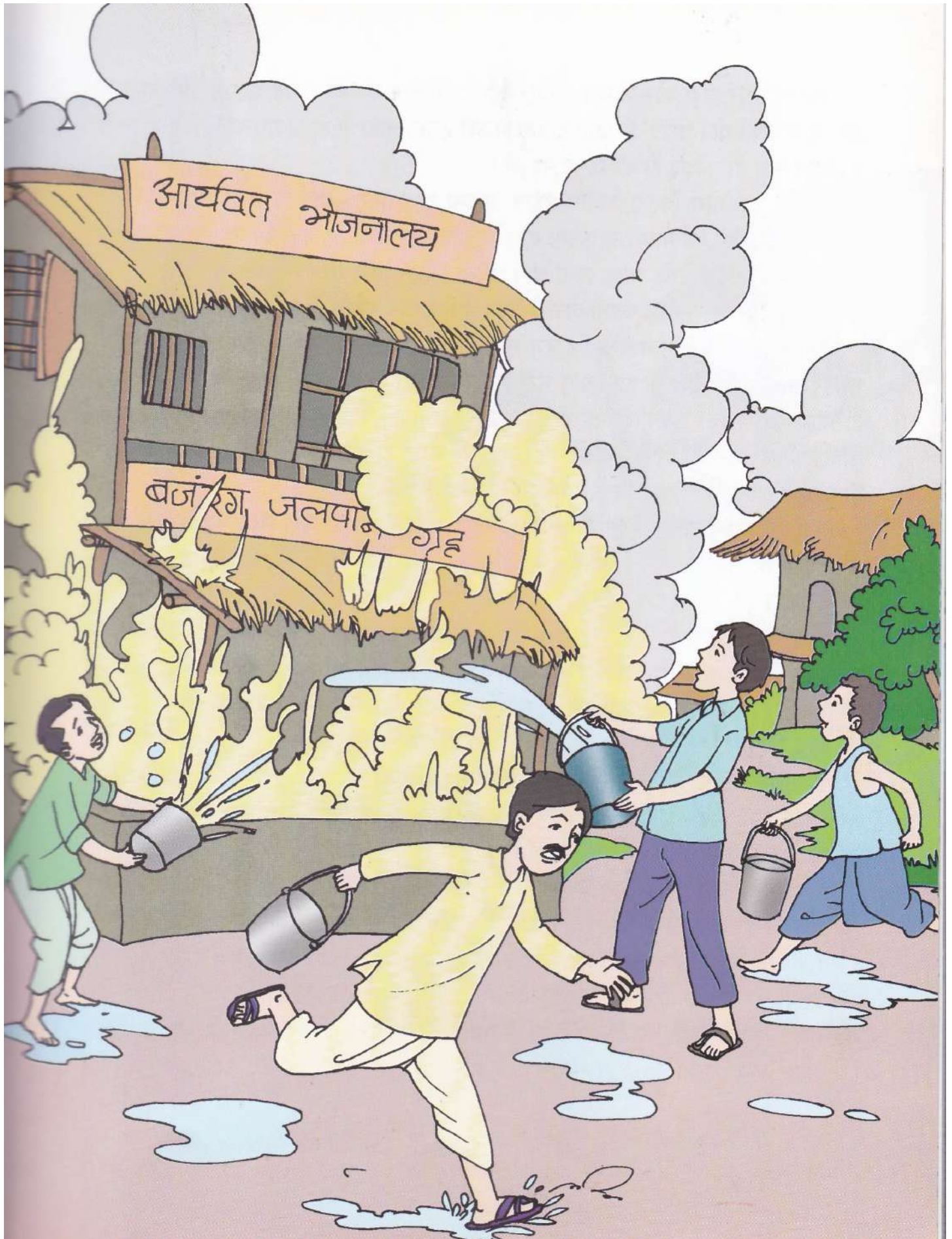
प्रभुराम ऊपर खड़ा जोर-जोर से 'आग! आग!!' चिल्ला रहा था। भीड़ बाड़े में और बाहर भी इकट्ठा हो चुकी थी। भट्टी की आग दोबारा भड़की। लोग बाहर से ही अंधाधुन्ध पानी फेंके जा रहे थे जिससे फर्श पर कीचड़ ही कीचड़ हो गई थी।

प्रभुराम एक गोरा चिट्टा, लहीम-शहीम आदमी था। मटर छीलने के लिए वह मटर से भरे बोरे को कपड़े धोने की मोगरी से कूटता था। हर वक्त वह ऊंची आवाज में हिन्दी फिल्मों के गाने मारवाड़ी में अनुदित करके गाता रहता था। "थारी प्यारी-प्यारी सूरत ने कणी री निजर नी लागे री..." गाते-गाते वह एकदम पतली-जनानी आवाज निकालने लगता था।

प्रभुराम को जैसे ही पता चला कि बजरंग वालों का गल्ला अन्दर रह गया है और गल्ले में नोट भरे हैं, उसने कमीज उतारते हुए हुंकार भरी – जिन्हें नाज है हिन्द पर वो कहां हैं? और एक गीली बोरी सिर पर डालकर सबके रोकते-रोकते आग में घुस गया। पांच मिनट में प्रभुराम गल्ला निकाल लाया, लेकिन इतनी ही देर में एकदम गोरे से एकदम काला हो गया। उसका दाहिना हाथ जल गया था। उसे देखकर लग रहा था कि उसे भयंकर तकलीफ हो रही है।

तभी घण्टी घनघनाती हुई फायर ब्रिगेड आ गई। फायर ब्रिगेड को सूनी सड़क पर तेजी से भागते सबने देखा था, पर नजदीक से किसी ने नहीं। तो तमाशबीनों की आधी भीड़ फायर ब्रिगेड की गाड़ी देखने भागी।

फायर ब्रिगेड के जवानों ने गहरे नीले रंग का कोट पैण्ट और काले बड़े जूते पहन रखे थे। सिर पर उनके बेहद खूबसूरत पीतल का चमचमाता हुआ हेलमेट था। लग रहा था जैसे वे सीधी हॉलीवुड की किसी फिल्म से या रोमन साम्राज्य के स्वर्णिम इतिहास से निकलकर आ रहे हों। मैंने उन्हें देखते ही निश्चय कर लिया कि चाहे दुनिया इधर से उधर हो जाए, मैं बड़ा होकर फायरमैन ही बनूंगा।

फायरवालों ने भीतर जाकर आग का जायजा लिया और फिर बाहर अपनी गाड़ी से बजरंग की रसोई तक एक चपटा केनवास का पाइप बिछा दिया। फिर उसके मुंह पर पीतल का एक बड़ा-सा नोजल लगा दिया और दो जवान उसे पकड़कर खड़े हो गए। मैं यही देखकर चकित था कि एक गट्टी में इतना लम्बा पाइप कैसे लिपटा था! इसके बाद ड्राइवर ने इंजन चालू किया और चपटा पाइप फूलने लगा और फूलते-फूलते एकदम गोल हो गया। उस पर खड़े हो जाओ तो भी न पिचके इतना कड़क। पाइप के नोजल से जिसे दो जवान पकड़े खड़े थे – पानी की खूब तेज धार निकली। धार इतनी तेज थी कि आग की तो क्या बिसात दीवारों के पलस्तर के चिप्पड़ उधड़-उधड़कर नीचे गिरने लगे। देखते-देखते बजरंग की रसोई में लाल-काले पानी का तालाब भर गया था। आग बुझ गई, धुंआ बाहर निकल गया और मकान तथा आंगन में पहले जो कीचड़ थी, अब दलदल बन गई
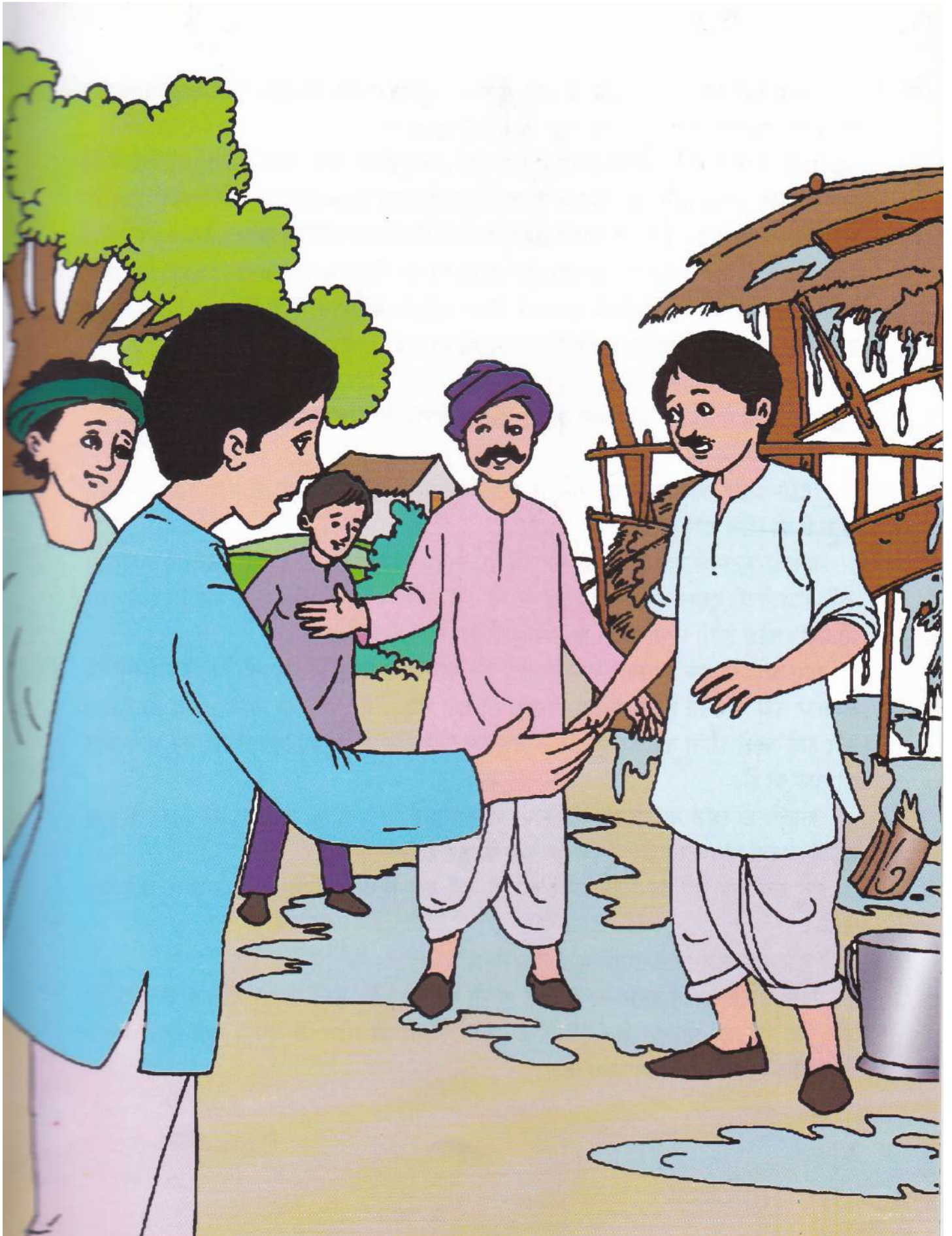
थी। फायर ब्रिगेड वाले आधे घण्टे में आग बुझाकर अपना सामान समेटकर बगैर घण्टी घनघनाते चले गए।

उनके जाने के बाद बाड़े के लोगों में यह चर्चा शुरू हुई कि आग लगी कैसे और सबसे पहले किसने देखा, फायर ब्रिगेड को किसने बुलाया और नुकसान कितना हुआ। एक आदमी बीमे के फायदे समझाने लगा। हर कोई अपनी बहादुरी की डींगें हांक रहा था। प्रभुराम को अस्पताल भेज दिया गया था। उसकी बहादुरी की सब तारीफ कर रहे थे। किसी ने कहा भला हो वैज्जी के लड़के का जिसने फायर ब्रिगेड वालों को फोन कर दिया। बाड़े के मर्द सोच रहे थे कि आग फैलते-फैलते उनके घर तक भी आ सकती थी। भट्टियां तो अब भी ऊपर-नीचे जलेंगी ही। ये तो हमेशा के लिए एक चिन्ता की बात हो गई।

तभी किसी ने कहा, ''अरे वैज्जी कहां हैं वैज्जी? वैज्जी को देखा किसी ने?''

''क्यों? घर में नहीं हैं?''

''देखो-देखो! कहीं आग का सुनकर टटोलते-टटोलते नीचे गली में तो नहीं निकल गए?'' नानाजी की खोज चालू हुई।

नानाजी कुटुम्बले वकील के यहां भी नहीं थे। लिमये के यहां भी नहीं। राजा की आई के घर भी नहीं। किराने की दुकान में भी नहीं। छत पर भी नहीं। लेटरीन में भी नहीं। बाहर नाई की दुकान पर भी नहीं। महेश डेयरी में भी नहीं। सन्दूकों वाली कोठरी में भी नहीं।

सारा बाड़ा परेशान हो गया! नानाजी कहां चले गए! नानाजी को दिखाई नहीं देता है। महीनों घर से बाहर नहीं निकलते हैं। निकलना भी पड़ा तो छड़ी लेकर और मुन्नू का या मेरा हाथ पकड़कर। और हाथ भी वे इतना कसकर पकड़ते हैं जैसे हम उन्हें बीच सड़क पर अकेला छोड़कर भाग जाने की सोच रहे हों!

नानाजी की खोज चल ही रही थी कि किसी ने बताया कि वैज्जी तो गेंदालाल की दुकान के पास खड़े हैं! ''क्या बात करते हो? सबके मुंह खुले के खुले रह गए?''

''तू सच कह रहा है? किसी और को तो नहीं देख लिया? वैज्जी थे तो उन्हें ले क्यों नहीं आया?''

''मुझे क्या मालूम? मैं समझा कोई साथ होगा!''

गेंदालाल की दुकान हमारे घर से कोई दो सौ मीटर दूर है। रास्ते में चार गलियां, तीन चौराहे और जेल रोड का शोरभरा तेज ट्रैफिक है। बगैर किसी की मदद के अपनी छड़ी टेकते वैज्जी गेंदालाल की दुकान तक कैसे पहुंच गए?

खैर! फिर मैं उन्हें लेकर आया।

इस घटना के साल भर बाद भी जब भी इस घटना की बात चलती, सुनाने वाला फायर ब्रिगेड, छोटे मामा, प्रभुराम, कीचड़, धूंए, आदि सबके बारे में विस्तार से बताता, पर अन्त में यह जरूर कहता..."और वैज्जी गेंदालाल की दुकान के पास मिले।"

नानाजी सुनते तो खिसियाकर अपनी टांट पर हाथ फेरने लगते।

आखिर चुक्कू कहां गया?

हम चार-पांच दोस्तों की अंतरंग मित्र मण्डली में राधेश्याम सबसे बड़ा था। उसकी उमर और कद दोनों हमसे कहीं ज्यादा थे। सातवीं कक्षा में ही उसकी मूंछें आने लगी थीं और आवाज भारी होने लगी थी। हम राधेश्याम के दोस्त हैं – यह जानकर कोई हमें जबर्दस्ती परेशान नहीं करता था। उल्टे हम ही थोड़ी दादागिरी कर लिया करते थे।

एक दिन राधेश्याम कहीं से भूरे रंग का एक छोटा-सा कुत्ते का पिल्ला उठा लाया। पिल्ला बड़ा प्यारा था। नाटा और बड़े-बड़े कानों वाला। उसकी आंखें एकदम गोल और चमकदार थीं। उसे देखने के लिए सारे बच्चे इकट्ठे हो गए। उसके सामने एक प्लास्टिक की कटोरी में दूध रख दिया गया...लेकिन दूध पीने की बजाय वह बारी-बारी से हम सबको ही देखे जा रहा था।

राधेश्याम ने बताया कि इसका नाम ओडायर है। दो-चार रोज में ही वह बच्चों के साथ हिल-मिल गया। और पता नहीं कैसे उसका नाम चुक्कू पड़ गया। शुरू-शुरू में तो राधेश्याम सबको बताता कि इसका नाम चुक्कू नहीं ओडायर है, पर फिर जैसे वो भी मान गया। उसका नाम चुक्कू ही ठीक है।

चुक्कू हरेक भागते हुए बच्चे के पीछे भागता। तुम रुक जाओ तो वह भी रुक जाएगा और एकटक तुम्हें देखने लगेगा। मानो इन्तजार कर रहा हो कि अब तुम क्या करते हो! चुक्कू को गोद में लेने की होड़ मची रहती और वह पूरी शाम इस गोद से उस गोद जाता रहता। कभी छीना झपटी से तंग आ जाता तो अपनी पतली-सी आवाज में भौंकने लगता। भौंकता तो बच्चे डर के उसे नीचे उतार देते, उसे घेरकर बैठ जाते और फिर उसी की तरह भौं-भौं करने लगते। यह देख वह चुप हो जाता और थोड़ी हैरानी से एक-एक का चेहरा देखने लगता – मानो सोच रहा हो कि ये क्यों भौंक रहे हैं? फिर जब सब अपने खेल में लग जाते तो धीरे-धीरे चलता हुआ वह एक कोने तक जाता और दीवार की तरफ मुंह करके थोड़ा-सा भौंकता, जैसे कह रहा हो – हां-नहीं-तो या जैसे अपनी आवाज टेस्ट कर रहा हो कि ठीक है या नहीं!

शुरू-शुरू में तो राधेश्याम के घरवाले चुक्कू को मुसीबत समझते और राधेश्याम को झिड़कते रहते कि कहां से उठा लाया इसे? सारा घर गन्दा कर रहा है! जा, छोड़के आ, जहां से लाया! लेकिन बहुत जल्द चुक्कू ने राधेश्याम के घरवालों का भी दिल जीत लिया। कुछ रोज बाद वह राधेश्याम की बहन प्रमिला की गोद में नजर आने लगा। प्रमिला उसे अपने हाथ से बिस्किट खिलाती तो उसकी सहेलियां उसे देखती रह जातीं कि हाय! इसे डर नहीं लगता! अभी काट लेता तो!

थोड़े दिनों में चुक्कू सबका लाड़ला बन गया। वह किसी के भी घर में घुस जाता और कहीं भी कुछ भी खा आता। लेकिन रात को जरूर अपने घर पहुंच जाता और हमेशा राधेश्याम के बिस्तर के पास ही सोता।

जब चुक्कू थोड़ा बड़ा हुआ तो राधेश्याम उसे साइकिल पर बैठाकर घुमाने ले जाने लगा। चुक्कू को बैठाने के लिए राधेश्याम ने साइकिल के आगे एक टोकरी भी लगवा ली थी। बाहर घूमने में चुक्कू को इतना मजा आता कि घण्टा भर घूमने के बाद भी टोकरी से उतरने को तैयार नहीं होता।

फिर राधेश्याम उसे शाम को स्कूल के ग्राउण्ड पर ले जाने लगा। ग्राउण्ड में खुली हवा में दौड़ने-कूदने में चुक्कू को बड़ा मजा आता। राधेश्याम साइकिल पर चुक्कू के साथ रेस लगाता। हम गेंद को आसमान में उछालते और चुक्कू दौड़कर जाता और जमीन पर पड़ते ही गेंद को मुंह में दबोच लाता।

साल भर में तो हाल यह हो गया कि हमारे कैम्पस में कहीं से भी आवाज आती – चुक्कू!! तो चुक्कू जहां भी होता वहां से हांफता-भागता हुआ उस पुकारने वाले के पास पहुंच जाता। एक और भी कारण से चुक्कू काफी लोकप्रिय हो गया था। उसके डर से घर में चूहों का आना बन्द हो गया था। चुक्कू को चूहे की भनक भी मिल जाती तो उसके सिर पर भूत सवार हो जाता। वह पीछे पड़ जाता और इधर से उधर, उधर से इधर झपट्टे मार-मारकर चूहे को खदेड़कर ही दम लेता।

एक दिन अचानक चुक्कू गायब हो गया।

हर घर में चुक्कू को ढूंढ़ा गया। यहां तक कि छत, बुखारी, अटाले की कोठरी और ताला जड़े कमरों को भी खुलवाकर देखा गया, लेकिन चुक्कू का कुछ पता नहीं चला। अन्दाजा लगाया गया कि शायद वह सड़क पर निकल गया हो और कोई बस या कार उसे कुचल गई हो, या हो सकता है किसी खुले मेनहोल में गिर गया हो और उसकी चीख-पुकार बाहर किसी को सुनाई ही न दी हो, या यह भी हो सकता है कि अनजाने में किसी की गाड़ी में बैठ गया हो...या हो सकता है चलते-चलते गंजी कम्पाउण्ड की तरफ निकल गया हो और गलियों के खूंखार आवारा कुत्तों ने उसे चीरफाड़ कर फेंक दिया हो! लेकिन किसी ने कुछ देखा तो नहीं था।

प्यारे भाई रामसहाय

परीक्षा के दिन नजदीक थे।

पूरे साल हमारे स्कूल में गणित पढ़ाने वाला कोई अध्यापक नहीं रहा था और हम सब डर रहे थे कि गणित के पेपर में हमारा क्या होगा? क्योंकि एक विषय में फेल हो जाने का मतलब था पूरा साल बरबाद हो जाना।

हम में से कुछ ने हमारे साइंस टीचर रस्तोगी सर के घर जाकर भी गणित पढ़ने की कोशिश की, लेकिन सफल नहीं हुए। बात यह थी कि रस्तोगी सर के घर एक छोटा बच्चा था जिसे शाम के समय उन्हें ही सम्हालना पड़ता था। और वह सर की गोद में आते ही चीख-चीखकर रोने लगता था। इससे रस्तोगी सर गणित पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाते थे।

हमारे मोहल्ले में एक सुधाकर काका थे जो बी.एससी. पढ़े थे। एक दिन जक्कू ने हम सबकी परेशानी उनके सामने रखी और वे कृपापूर्वक हमें गणित पढ़ाने में राजी भी हो गए। लेकिन जब हम झुण्ड बनाकर उनसे गणित पढ़ने गए तो पूरे एक घण्टे वे हमें पढ़ाने के बजाय खुद हमसे ही गणित समझते रहे और बीच-बीच में कहते रहे, "पहले समझना तो पड़ेगा न!"

बड़ी परेशानी थी। राधेश्याम बालकिशन जैसे कुछ लड़के नकल की पर्ची भी ले जाते थे। लेकिन गणित में क्या ले जाओगे? हद से हद फार्मूला! सही तरीके से लगाकर सवाल तो खुद ही करना पड़ेगा न! और कहां कौन-सा फार्मूला लगाना है यह कौन बताएगा? और आगे-पीछे वालों से उत्तर भी कैसे मिलाओगे? कैसे पता चलेगा कि किसका उत्तर ठीक है?

बेहद मायूसी का आलम था। समझ में नहीं आता था इस मरे 'ए प्लस बी और साइन-कॉज अल्फा-बीटा' का जिन्दगी से लेना-देना क्या है! पता नहीं किस अहमक ने गणित जैसे रूखे-सूखे

विषय की रचना की है और बच्चों को परेशान करने के लिए इसे कोर्स में भी लगा दिया है! और एक बात तो सबको मालूम है – और कोई हो न हो, गणित के टीचर तो जरूर खड़ूस होते हैं। न हंसें, न गाएं। पता नहीं इनके घरवाले इन्हें कैसे बरदाश्त करते होंगे! हो सकता है इतने साल में इनके बच्चे भी इन्हें पापा-पापा कहने की बजाय थीटा-थीटा कहने लगे हों!

लेकिन परीक्षा में तो बैठना ही पड़ेगा! इसका क्या करें?

एक दिन राधेश्याम गणित की परीक्षा में पास होने का एक नायाब नुस्खा लेकर आया। यह नुस्खा वह अपने पुराने मोहल्ले के एक तांत्रिक से लेकर आया था जो अभी-अभी जेल से छूटकर आया था। नुस्खा यह था कि तीन दिन पहले जली किसी चिता की चुटकी भर राख यदि अमुक मंत्र पढ़कर उत्तरपुस्तिका के नीचे रख दो तो अपने आप सही उत्तर उतरते चले जाएंगे, और अगर तुमने ऐसा कर लिया तो किसी के पूज्य पिताजी तुम्हें फेल नहीं कर सकते!

मरता क्या न करता हम लोग चिता की राख लाने के लिए शमशान जाने की योजना बनाने लगे। शमशान हमारे स्कूल से जरा ही दूर खान नदी के किनारे पर था। तो अब सुबह से शाम तक शमशान पर नजर रखी जाने लगी। कब कौन सा मुर्दा आया और कहां जला?

मुन्नू ने तो अपनी सामाजिक अध्ययन की कॉपी में एक पृष्ठ पर बाकायदा एक टेबल जैसे बना ली। दिनांक, मुर्दा क्रमांक, लाने का समय, जलने का स्थान वगैरह।

जाहिर है सजायाफ्ता तांत्रिक के बताए नुस्खे पर अपार श्रद्धा होने के बावजूद सब बच्चे इस अभियान के लिए तैयार नहीं हुए। लेकिन घटते-घटते निश्चित दिन नहीं – दिन में यह काम कैसे किया जा सकता है – निश्चित रात की ठीक ग्यारह बजे राधेश्याम की सीटी सुनकर सात बच्चे बाड़े के बाहर आ ही गए।

हम लोग पहले चुपचाप और दबे कदमों गली से बाहर निकले और फिर तेज-तेज चलने लगे – बल्कि दौड़ने लगे।

अंधेरी रात थी। हवा में ठण्डक थी। सड़क पर एकाध आवारा गायों को छोड़कर जीवन का कोई चिन्ह नहीं था। गंजी कम्पाउण्ड के पीछे निकलते ही शमशान साफ दिखाई देने लगा। एक चिता धीमे-धीमे जल रही थी। आसपास उसका जरा-जरा उजाला था। चारों तरफ सन्नाटा था। हम सब झाड़ियों में दुबककर बैठ गए। इत्मीनान कर लेना जरूरी था कि शमशान में इस समय कोई है तो नहीं!

आदमी नहीं होगा, लेकिन भूत तो हो सकता था! जिसके उल्टे पैर होते हैं! अचानक किसी पेड़ पर से कूदकर किसी की – मान लो मेरी ही – गरदन दबोच ले, झपट्टा मारकर आसमान में ले जाए और मेरी मुण्डी काटकर नीचे फेंक दे...तो??

...या फिर कोई चुड़ैल बाल फैलाए, अट्टहास करती अचानक कहीं से निकल आए और किसी की – हो सकता है मेरी ही – छाती पर चढ़कर बैठ जाए और अपने गन्दे पैने नाखूनों से छाती फाड़कर खून पीने लगे...तो??

...नहीं,...नहीं...। भूत-प्रेत कुछ नहीं होता। सब अन्धविश्वास की बातें हैं। हमें सिर्फ चुटकी भर राख ही तो चाहिए।

...लेकिन चिता को हाथ लगाते ही अगर उस पर पड़ा अधजला मुर्दा अचानक उठकर बैठ जाता और उसका कंकाल कसकर तुम्हारा हाथ पकड़ ले तो? क्या करोगे? कौन बचाने आएगा?

...नहीं...नहीं...अधजला मुर्दा कैसे उठकर बैठ सकता है और बेचारे गणित के मारे किसी निर्दोष बच्चे का हाथ पकड़ सकता है! उसके भी तो छोटे-छोटे बच्चे होंगे! उन्हें भी तो गणित पढ़ना पड़ता होगा!

...लेकिन यह जरूर हो सकता है कि जिस जगह तुम खड़े हो...वहां किसी बच्चे की लाश गड़ी हुई हो! तुम्हारे जमीन पर जरा-सा जोर देते ही तुम्हारा एक पैर तीन फुट जमीन के भीतर धसक जाए, जमीन फोड़कर लाश का सिर और एक हाथ बाहर निकल आए और उसकी कंचे जैसी निर्जीव और भावहीन एक आंख तुम्हें घूरने लगे!!

ऐसे ही ख्याल हम लोगों के मन में घुड़दौड़ मचाए हुए थे!

...पास ही कहीं सरसराहट हुई। या शायद अन्धेरे में कोई उड़ता हुआ आया और कान को छूता हुआ निकल गया।

मुन्नू धीरे से बोला, "बालकिशन! यार यहीं से वापस चले चलें क्या?"

"अबे चोप!' बालकिशन ने झिड़क दिया।

कुछ देर बाद रास्ता साफ पाकर हम सब एक-दूसरे का हाथ पकड़े शमशान के भीतर घुसे। हमारी टांगे थर-थर कांप रही थीं। घोर सन्नाटा और अन्धेरा था। कभी भी कोई अन्धेरे से कूदकर सामने आ सकता था।

बालकिशन ने जैसे ही राख उठाने के लिए हाथ बढ़ाया कहीं कोई कुत्ता बड़ी जोर से 'भूऊऊ' करके रोया। बालकिशन एकदम सकपका कर पीछे हटा। जक्कू तो चीख पड़ा और मुड़कर भागा। इसी समय चिता के पीछे से हाथ में गिलास लिए बिखरे बालों वाली एक मोटी और काली कलूटी

औरत उठ खड़ी हुई। उसके दांत बाहर निकले हुए थे, आंखें लाल थीं। उसे देखते ही हममें से कइयों की चीख निकल गई। सब भागे। मुन्नू धक्का खाकर गिर पड़ा। उसकी कमीज पर राधेश्याम का पांव रखा गया। मुन्नू उठा तो कमीज चर्र से फट गई। उसे लगा औरत ने उसे पकड़ लिया हो। वह बिलबिलाकर रो पड़ा। बालकिशन और राधेश्याम एक तरह से उसे उठाकर घर तक लाए।

इस साहसिक अभियान के बहादुर यात्रियों में से कम से कम तीन ने कई साल बाद बताया कि उस दिन उनकी निकर गीली हो चुकी थी और इसी हाल में बिस्तर में घुसकर वे सोच रहे थे कि इससे तो एक साल फेल हो जाना शायद ज्यादा ठीक रहता।

गीता ऑफसेट प्रिंटर्स प्रा. लि., नई दिल्ली–20 द्वारा मुद्रित।

स्वयं प्रकाश, हिंदी लेखन जगत में चिर-परिचित नाम है। उन्हें बनमाला सम्मान, पहल सम्मान, राजस्थान साहित्य अकादमी सम्मान जैसे कई बड़े सम्मानों से अलंकृत किया जा चुका है। सन् 1947 में इंदौर (मालवा, इंदौर) में जन्मे स्वयं प्रकाश ने बच्चों की पत्रिका 'चकमक' के लिए एक स्तंभ लिखा था—'प्यारे भाई रामसहाय।' असल में यह उनकी बचपन की यादें थीं, जिन्हें उन्होंने एक काल्पनिक मित्र 'रामसहाय' के नाम लिखे गए पत्रों में पिरोया था। जब ये पत्रिका में छपे तो बच्चे ही नहीं बड़ों को भी बहुत पसंद आए। अब इनमें से चुनिंदा यादों को बच्चों के लिए पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

फजरूद्दीन बच्चों की पुस्तकों के चर्चित चित्रकार हैं व रा.पु.न्यास के साथ-साथ कई अन्य लब्ध प्रकाशन गृहों के लिए भी 50 से अधिक पुस्तकों के लिए चित्रांकन कर चुके हैं।

nbt.india

एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

NATIONAL BOOK TRUST, INDIA

₹ 80.00

ISBN 812376578-9

18191224